पंचदश खण्ड

श्रीरामकृष्ण कलकत्ता के बसुबलराम-मन्दिर में

प्रथम परिच्छेद

(नरेन्द्र और हाजरा महाशय)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण बलराम की दोतल की बैठक में भक्तों के संग बैठे हुए हैं। सहास्यवदन हैं। भक्तों के साथ बातें कर रहे हैं। नरेन्द्र, मास्टर, भवनाथ, पूर्ण, पल्टु, छोटे नरेन, गिरीश, रामबाबू, द्विज, विनोद इत्यादि अनेक भक्त चारों ओर बैठे हुए हैं।

आज शनिवार है, समय 3 का। बैशाख कृष्णा दशमी तिथि; 9 मई, 1885 ईसवी।

बलराम घर में नहीं हैं। शरीर अस्वस्थ होने के कारण जलवायु-परिवर्तन के लिए मुंगेर गए हैं। ज्येष्ठा कन्या (अब स्वर्गगता) ने ठाकुर और भक्तों को निमन्त्रण करके बुलाकर महोत्सव किया है। ठाकुर खाने-पीने के बाद थोड़ा विश्राम कर रहे हैं।

ठाकुर मास्टर को बार-बार पूछ रहे हैं, ''तुम बताओ, क्या मैं उदार हूँ?''

भवनाथ सहास्य कह रहे हैं, ''वे फिर क्या कहेंगे, चुप रहेंगे!''

एक हिन्दुस्तानी भिखारी गाना गाने आए हैं। भक्तों ने दो-एक गाने सुने। गाना नरेन्द्र को अच्छा लगा है। उन्होंने गायक से कहा, ''और गाओ।''

श्रीरामकृष्ण— बस रहने दे, और जरूरत नहीं। पैसे कहाँ? *(नरेन्द्र के प्रति)* तूने तो कह दिया!

भक्त *(सहास्य)*— महाशय, आप को अमीर समझता है, आप तकिये के सहारे जो बैठे हैं। *(सबका हास्य)*
श्रीरामकृष्ण *(हँसकर)*— बीमार हो गया है, समझता है।

हाजरा के अहंकार की बात चली। किसी कारणवश हाजरा को दक्षिणेश्वर की कालीबाड़ी त्याग करके चले जाना पड़ा था।

नरेन्द्र— हाजरा अब मानता है, उसको अहंकार हुआ था।
श्रीरामकृष्ण— उसकी बात पर विश्वास मत करो। दक्षिणेश्वर फिर दोबारा आने के लिए इस प्रकार बातें करता है। *(भक्तों से)* नरेन्द्र तो केवल कहता है, 'हाजरा खूब भला व्यक्ति है'।
नरेन्द्र— अब भी कहता हूँ।
श्रीरामकृष्ण— क्यों? इतना सब सुनकर भी!
नरेन्द्र— दोष थोड़ा-सा है, किन्तु गुण अनेक ही हैं।
श्रीरामकृष्ण— हाँ, निष्ठा तो है।

''वह मुझ से कहता है, अब तुमको मैं अच्छा नहीं लगता— किन्तु बाद में मुझको तुम्हें खोजना पड़ेगा। श्री रामपुर से एक गोसाईं आया था— अद्वैत-वंश। इच्छा हुई कि वहाँ पर एक-दो रात ठहरे। मैंने आदर से उसको ठहरने के लिए कहा था। हाजरा ने कहा कि 'उसको खजाञ्ची के पास भेज दो।' इस बात का मतलब यही है कि जो दूध-शूध, जो कुछ वह पीछे माँगेगा तो हाजरा के भाग में से ही कुछ देना पड़ेगा। मैंने कहा— किन्तु अरे साले! मैं उन्हें गोसाईं जानकर साष्टांग करता हूँ और तू संसार में रहकर कामिनी-काञ्चन लेकर नाना काण्ड करता है! अब थोड़ा-सा जप करता है तो इतना अहंकार हो गया है! लज्जा नहीं आती?

''सत्त्व गुण से ईश्वर मिलते हैं। रजोगुण-तमोगुण ईश्वर से दूर करते हैं। सत्त्वगुण की सफेद रंग से उपमा दी है। रजोगुण की लाल रंग के साथ और तमोगुण की काले रंग के साथ उपमा दी है। मैंने एक दिन हाजरा से पूछा, तुम बताओ किसका कितना सत्त्वगुण हुआ है। वह बोला, नरेन्द्र का सोलह आना, और मेरा एक रुपया दो आना। मैंने पूछा, मेरा कितना हुआ है?

तो बोला, तुम्हारे में अभी भी लाल-सी झलक मारती है— तुम्हारा बारह आना। *(सबका हास्य)*।

"दक्षिणेश्वर में बैठा हुआ हाजरा जप किया करता था और उसमें ही दलाली की चेष्टा भी किया करता। घर में कई हजार रुपया उधार देना था— उसी को देने की चिन्ता में था। रसोइये ब्राह्मण के विषय में कहा करता था, उन जैसे लोगों के संग क्या मैं बातें करता हूँ!"

(कामना ईश्वर-लाभ में विघ्न है, ईश्वर बालक-स्वभाव)

"बात क्या है, जानते हो? तनिक-सी भी कामना रहने पर भगवान को प्राप्त नहीं किया जाता। कर्म की है सूक्ष्मा गति! सूई में धागा (सूत) पिरोना है। किन्तु सूत में ज़रा भी रेशा रहने पर वह सूई के भीतर प्रवेश नहीं करेगा।

"तीस वर्ष माला जपता है, तब भी क्यों नहीं होता? विषैला घाव हो तो उपले की सेक दी जाती है। न देने पर केवल औषध से आराम नहीं होता।

"कामना रहने पर जितनी भी साधना क्यों न की जाए, सिद्धि-लाभ नहीं होता। किन्तु तब भी एक बात है— ईश्वर की कृपा होने पर, ईश्वर की दया होने पर एक क्षण में सिद्धि-लाभ कर सकता है। जैसे हजार वर्ष के अन्धेरे कमरे में हठात् यदि कोई प्रदीप ले आए, तो फिर एक क्षण में प्रकाश हो जाता है!

"गरीब का लड़का बड़े मनुष्य की नजर में पड़ गया। उसकी लड़की के संग उसका विवाह हो गया। तुरन्त गाड़ी-घोड़ा, दास-दासी, पोषाक, असबाव, घर— सब कुछ हो गया।"

एकजन भक्त— महाशय, कृपा कैसे होती है?

श्रीरामकृष्ण— ईश्वर बालक-स्वभाव हैं। जैसे कोई लड़का पल्ले में रत्न लेकर बैठा हुआ है। कितने ही लोग मार्ग से जा रहे हैं। बहुत-से उससे रत्न माँगते हैं। किन्तु वह कपड़े पर हाथ रखकर मुख मोड़कर कह देता है— नहीं, मैं नहीं दूँगा। और फिर शायद जिसने माँगा भी नहीं है, जा ही रहा है, पीछे-पीछे दौड़कर जाकर झट से उसको सब दे देता है!

(त्याग— तब ईश्वर-लाभ; पूर्व कथा— सेजो बाबू का भाव)

श्रीरामकृष्ण— त्याग बिना हुए ईश्वर को नहीं पाया जाता।

''मेरी बात कौन लेगा ? मैं संगी खोजता हूँ— अपने भाव का व्यक्ति। खूब बड़ा भक्त देखकर मन में लगता है, शायद यही मेरा भाव ले सकेगा। फिर देखता हूँ, वह और ही एक प्रकार का हो जाता है।

''एक भूत संगी खोज रहा था। शनि-मंगलवार को अपघात मृत्यु होने पर भूत बनता है। वह भूत ज्यों ही देखता कि कोई शनि-मंगलवार को उस प्रकार मर रहा है, त्यों ही वहाँ दौड़कर जाता। सोचता, अब शायद मेरा संगी बना। किन्तु निकट पहुँचा और वह व्यक्ति खड़ा हो जाता। शायद छत से गिरा था, बेहोश हो गया था, फिर बच गया।

''सेजोबाबू (मथुरबाबू) को भाव हुआ। सर्वदा ही मतवाले की भाँति रहता— कोई भी काज नहीं कर सकता। तब सब ही कहने लगे कि इसके ऐसा हो जाने पर विषय (जगत का काम) कौन देखेगा ? छोटे भट्टाचार्जी (रामकृष्ण) ने निश्चय कोई टोना किया है।''

(नरेन्द्र का बेहोश होना— गुरु-शिष्य की दो कहानियाँ)

''नरेन्द्र जब पहले-पहले आया, उसकी छाती पर हाथ देने से बेहोश हो गया। तब फिर चैतन्य होने पर रोने लगा— ए जी, मुझे ऐसा क्यों किया ? मेरा बाप है, मेरी माँ जो है जी ! 'मेरा', 'मेरा' करना— यही तो अज्ञान से होता है।

''गुरु ने शिष्य से कहा, संसार मिथ्या है, तू मेरे संग चला आ। शिष्य बोला, ठाकुर (महाराज), ये लोग सब मुझे इतना अधिक प्यार करते हैं— मेरा बाप, मेरी माँ, मेरी स्त्री— इनको छोड़कर कैसे चलूँ ? गुरु बोले— तू 'मेरी', 'मेरा' तो चाहे करता है, और कहता है ये प्यार करते हैं, किन्तु यह सब भूल है। मैं तुझे कूट कौशल सिखा देता हूँ। उसे कर, तब तू समझ जाएगा कि वे सचमुच ही तुझे प्यार करते हैं कि नहीं ! यह कहकर एक औषध की गोली उसके हाथ में देकर बोले, इसे खा ले। मृतक के समान हो जाएगा। तेरा होश (ज्ञान)

नहीं जाएगा, सब देख-सुन सकेगा। फिर मेरे आ जाने पर तेरी क्रमश: पूर्वावस्था हो जाएगी।

''उस शिष्य ने ठीक उसी प्रकार किया। घर में 'रोयाराट' मच गया। माँ, स्त्री, सब अछाड़-पिछाड़ खा-खाकर रोने लगे। ठीक इसी समय एक ब्राह्मण आकर बोला, क्या हो गया है भाई ? उन सबने कहा, यह लड़का मर गया है। ब्राह्मण ने मरे मनुष्य का हाथ देखकर कहा, अरे यह क्या! यह तो मरा नहीं है। मैं एक औषध देता हूँ। खाते ही सब चला जाएगा। घर के सबने ही जैसे हाथ में स्वर्ग पा लिया। तब ब्राह्मण बोले, किन्तु एक बात है। औषध पहले एक व्यक्ति को खानी होगी, तत्पश्चात् उसको खानी होगी। जो पहले खाएगा, उसकी किन्तु मृत्यु हो जाएगी। देख रहा हूँ, इसके तो बहुत-से अपने जन हैं, कोई-न-कोई अवश्य खा लेगा। माँ और स्त्री— ये बहुत रो रही हैं। ये अवश्य खा सकेंगी।

''तब सब के सब क्रन्दन छोड़कर चुप हो गए! माँ बोली— ऐं! यह इतनी बड़ी गृहस्थी, मेरे चले जाने से कौन यह सब देखेगा, सम्भालेगा— यह कहकर चिन्ता में पड़ गई। स्त्री अभी-अभी यह कहकर रो रही थी, 'अरी दीदी, यह मेरा क्या हो गया जी!' वह बोली, यही तो— उनका तो जो होना था हो गया है। मेरे दो-तीन नाबालिग लड़के-लड़कियाँ हैं— मैं यदि चली गई तो इनको कौन देखेगा?

''शिष्य सब कुछ देख रहा था, सुन रहा था। वह तब उठकर खड़ा हो गया और बोला, गुरुदेव चलिए, आपके संग में चलता हूँ।'' *(सबका हास्य)*।

''और एक शिष्य ने गुरु से कहा था, मेरी स्त्री बड़ी सेवा करती है, उसके लिए ही गुरुदेव मैं जा नहीं पा रहा हूँ। वह शिष्य हठयोग किया करता था। गुरु ने उसको एक कौशल सिखा दिया। एक दिन उसके घर में खूब रोयाराट मच गया। मुहल्ले के लोग आकर देखते हैं कि हठयोगी घर में आसन पर बैठा है— टेढ़ा-मेढ़ा, अकड़ा हुआ। सबने यही समझा कि उसका प्राणवायु निकल गया है। स्त्री अछाड़-पछाड़ खाकर रो रही है, 'अजी, यह मेरा क्या

हो गया— अजी, तुम हमारा क्या कर गए जी! अरी दीदी माँ, ऐसा हो जाएगा, ऐसा तो मैं नहीं जानती थी!' इधर रिश्तेदार खाट ले आए, उसको कमरे से बाहर निकालते हैं।

"तब एक गड़बड़ मची। टेढ़ा-मेढ़ा अकड़ा हुआ शरीर होने के कारण द्वार में से निकलता नहीं। तब कोई पड़ोसी दौड़कर एक कटारी लेकर द्वार की चौकाठ काटने लगा। स्त्री अस्थिर हुई रो रही थी, वह दुम्-दुम् शब्द सुनकर भाग आई। आकर रोते-रोते पूछा, अजी क्या हो गया! उन्होंने बताया, ये बाहर निकलते नहीं हैं तभी चौकाठ काट रहा हूँ। तब स्त्री ने कहा, अजी, ऐसा काम मत करें। मैं अब राँड (बेवा) हो गई हूँ। मेरा देखने वाला और कोई नहीं है, इन कई नाबालिगों को पालना है। इस द्वार के कट जाने पर फिर और तो बनेगा नहीं। अजी, उनका तो जो होना था वह तो हो ही गया है— उनके हाथ-पैर काट दो! तब हठयोगी खड़ा हो गया। उसका तब तक औषध का नशा चला गया था। खड़ा होकर कहता है, 'तो फिर ओ साली, मेरे हाथ-पैर काटेगी?' यह कहकर घर का त्याग करके गुरु के संग चला गया। *(सबका हास्य)*।

"बहुत-से लोग ढोंग करके शोक करते हैं। रोना पड़ेगा, इसलिए पहले ही नथ उतार लेती है और सब गहने उतार लेती है; खोलकर बक्स में ताले में रख देती है। तब फिर पीट-पीटकर अछाड़ें-पिछाड़ें खाकर रोती है, 'अरी मेरी दीदी री, मेरा यह क्या हो गया जी!"

द्वितीय परिच्छेद

(अवतार के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण के सम्मुख नरेन्द्रादि के विचार)

नरेन्द्र— Proof (प्रमाण) बिना मिले क्योंकर विश्वास करूँ कि ईश्वर मनुष्य बनकर आते हैं?

गिरीश— विश्वास ही sufficient proof (यथेष्ट प्रमाण) है। यह वस्तु यहाँ पर है, इसका प्रमाण क्या है? विश्वास ही प्रमाण है।

एकजन भक्त— External world (बहिर्जगत) बाहर है। फिलोसफर (दार्शनिकगण) कुछ prove (प्रमाणित) कर सके हैं? तभी कहते हैं irresistible belief (अदम्य विश्वास)।

गिरीश *(नरेन्द्र के प्रति)*— तुम्हारे सम्मुख आ जाने पर भी तो विश्वास नहीं करोगे! शायद कहोगे, वह कहता है, मैं ईश्वर मनुष्य होकर आया हूँ, वह झूठा, पाखण्डी है।

'देवतागण अमर हैं'— यह बात उठी।

नरेन्द्र— उसका प्रमाण कहाँ है?

गिरीश— तुम्हारे सामने आ जाने पर भी तो विश्वास नहीं करोगे।

नरेन्द्र— 'अमर, past-ages (अतीतकाल) में थे'— प्रूफ (प्रमाण) चाहिए।

मणि पल्टु से कुछ कहते हैं।

पल्टु *(नरेन्द्र के प्रति, सहास्य)*— अनादि का क्या प्रयोजन? अमर होना हो तो अनन्त होना आवश्यक है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— नरेन्द्र वकील का बेटा, पल्टु डिप्टी का बेटा *(सबका हास्य)*।

सब चुप हैं।

योगीन *(गिरीश आदि भक्तों के प्रति सहास्य)*— नरेन्द्र की बात ये (ठाकुर) और नहीं लेते।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— मैंने एक दिन कहा था, चातक आकाश के जल को छोड़ और कोई जल नहीं पीता। नरेन्द्र ने कहा, चातक यह जल भी पीता है। तब माँ से कहा था कि माँ, तो फिर क्या ये सब बातें मिथ्या हो गईं! भारी भावना हुई (बड़ी चिन्ता हुई) थी। और एक दिन फिर नरेन्द्र आया था। कमरे में कुछ पक्षी उड़ रहे थे, देखकर बोल उठा— 'वही! वही!' मैंने कहा, क्या? वह बोला, 'वही चातक! वही चातक!' देखा कितनी सारी चामचिकें*

---

* चामचिकें = छोटी जाति के चमगादड़ जो घरों में घोंसला बनाकर रहते हैं।

थीं। तब से उसकी बात फिर नहीं लेता। *(सबका हास्य)*।

(ईश्वर-रूप-दर्शन या मन की भूल ?)

श्रीरामकृष्ण— यदुमल्लिक के बागान में नरेन्द्र ने कहा, तुम ईश्वर के रूप-टूप जो देखते हो, वह मन की भूल है। तब अवाक् होकर उससे कहा था, क्या बात कहता है रे ? नरेन्द्र बोला, ऐसा होता है। तब माँ के पास आकर रोने लगा! कहा— माँ, यह क्या हो गया! यह समस्त क्या झूठ है ? नरेन्द्र ने ऐसी बात कही है! तब दिखला दिया— चैतन्य, अखण्ड चैतन्य— चैतन्यमय रूप। और कहा, 'ये समस्त बातें कैसे मिलती हैं, यदि मिथ्या होतीं तो!' तब कहा था, 'साले, तू मुझे अविश्वासी करता था! तू फिर मत आइयो!'

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण— शास्त्र और ईश्वर की वाणी— Revelation)

फिर और विचार होने लगा। नरेन्द्र विचार करते हैं। नरेन्द्र की वयस् अब 22 वर्ष चार महीने होगी।

नरेन्द्र *(गिरीश, मास्टर प्रभृति से)*— शास्त्र में ही फिर विश्वास कैसे करूँ! महानिर्वाणतन्त्र एक बार कहता है, ब्रह्मज्ञान न हो तो नरक होगा। और फिर कहता है, पार्वती की उपासना को छोड़ और उपाय नहीं। मनुसंहिता में मनु लिखते हैं मनु की ही बात। मोजिस (मूसा) लिखते हैं 'पेण्ट्याट्युक्'— उनकी अपनी मृत्यु का ही वर्णन!

''सांख्य दर्शन कहता है, 'ईश्वरासिद्धेः'— ईश्वर हैं, यह प्रमाणित नहीं किया जाता। और कहता है, वेद मानना चाहिए, वेद नित्य है।

''इस कारण यह समस्त नहीं है, यह मैं नहीं कहता! समझ नहीं पाता, समझा दो! शास्त्र का अर्थ जिसके मन में जो आया है, वही किया है। अब कौन-सा लूँ ? व्हाइट लाइट (सफेद रोशनी) रेड मीडियम (लाल काँच) के द्वारा आने पर लाल दीखती है, ग्रीन (हरी) मीडियम से आने पर ग्रीन दीखती है।''

एकजन भक्त— गीता में भगवान ने कही है।

श्रीरामकृष्ण— गीता सब शास्त्रों का सार है। संन्यासी के पास और कुछ न हो, एक छोटी गीता तो जरूर रहेगी।

एकजन भक्त— गीता श्रीकृष्ण ने कही है!

नरेन्द्र— श्रीकृष्ण ने कही है, या इन्होंने (श्रीरामकृष्ण ने) कही है!

ठाकुर श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र की ये बातें अवाक् होकर सुन रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— ये समस्त सुन्दर बातें हो रही हैं।

''शास्त्र का दो प्रकार का अर्थ है— शब्दार्थ और मर्मार्थ। केवल बस मर्मार्थ ही लेना चाहिए— जो अर्थ ईश्वर की वाणी के संग में मिलता है। चिट्ठी की बात और जिस व्यक्ति ने चिट्ठी लिखी है उसके मुख की बात में बड़ा अन्तर है। शास्त्र होता है, चिट्ठी की बात; ईश्वर की वाणी मुख की बात। मैं माँ के मुख की बात के संग में बिना मिलाए कुछ भी नहीं लेता।

फिर दोबारा अवतार की बात उठी।

नरेन्द्र— ईश्वर में विश्वास होने से ही हुआ। फिर वे कहाँ पर झूल रहे हैं या क्या कर रहे हैं, इसका मुझे प्रयोजन नहीं। अनन्त ब्रह्माण्ड! अनन्त अवतार!

'अनन्त ब्रह्माण्ड', 'अनन्त अवतार' सुनकर श्रीरामकृष्ण ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और कह रहे हैं, 'आहा!'

मणि भवनाथ से कुछ कह रहे हैं।

भवनाथ— ये कहते हैं, 'हाथी जब देखा नहीं, तब वह सूई के भीतर जा सकता है या नहीं, कैसे जाना जाएगा? ईश्वर को जानता नहीं, अथच वे मनुष्य होकर अवतार हो सकते हैं कि नहीं, विचार द्वारा कैसे समझूँगा!'

श्रीरामकृष्ण— सब ही सम्भव है। वे जादू लगा देते हैं! जादूगर गले के भीतर छुरी लगा देता है, और फिर बाहर कर लेता है। ईंट के टुकड़े खा लेता है!

तृतीय परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण और कर्म— उनकी ब्रह्मज्ञान की अवस्था)

भक्त— ब्राह्मसमाज के लोग कहते हैं, गृहस्थ (संसार) का कर्म करना कर्त्तव्य है। इस कर्म का त्याग नहीं करना होगा।

गिरीश— 'सुलभ समाचार' में इसी प्रकार लिखा हुआ है, मैंने देखा था। किन्तु ईश्वर को जानने के लिए जो समस्त कर्म हैं, वे ही पूरे किए नहीं जा पाते, फिर अन्य और कर्म!

श्रीरामकृष्ण ने ईषत् हँसकर मास्टर की ओर देखते हुए नयनों द्वारा इंगित किया, 'यह जो कहता है वही ठीक है।'

मास्टर समझ गए, कर्मकाण्ड बड़ा कठिन है।

पूर्ण आए हैं।

श्रीरामकृष्ण— किसने तुम्हें खबर दी!

पूर्ण— सारदा।

श्रीरामकृष्ण *(उपस्थित स्त्री भक्तों के प्रति)*— अरे, इसको (पूर्ण को) थोड़ा जलपान करने को दो तो।

अब नरेन्द्र गाना गाएँगे। ठाकुर श्रीरामकृष्ण और भक्तगण सुनेंगे। नरेन्द्र गा रहे हैं—

गान— परवत पाथार।
व्योमे जागो रुद्र उद्यत बाज।
देव-देव महादेव, काल-काल महाकाल,
धर्मराज शंकर शिव तारो हरो पाप।

[भावार्थ— पर्वत, समुद्र, व्योम में उद्यत (उठे हुए) वज्र वाले हे रुद्र, आप जागो। देवों के देव महादेव आप हैं। कालों के काल महाकाल आप हैं। हे धर्मराज शंकर शिव, आप हमारे पाप हरो।]

गान— सुन्दर तोमार नाम दीनशरण हे,
बहिछे अमृत-धार, जुड़ाय श्रवण, प्राण-रमण हे!

[भावार्थ— हे प्राण-रमण, तुम्हारा दीनशरण नाम बड़ा ही सुन्दर है। इसमें अमृत-धारा बहती है। और इसे सुनने से शान्ति (ठण्डक) मिलती है।]

गान— विपद-भय वारण, जे करे ओ रे मन, ताँरे केनो डाको ना;
मिछे भ्रमे भुले सदा, रयेछो भवघोरे मजि, एकि विडम्बना।
ए धन जन, ना रबे हेन ताँरे जेनो भुलो ना;
छाड़ि असार, भजहो सार, जावे भव जातना।
एखन हित बचन शोनो, जतने करि धारणा;
वदन भरि, नाम हरि, सतत करो घोषणा।
यदि ए भवे पार होबे छाड़ो विषय वासना;
संपिये तनु हृदय मन, ताँर करो साधना।

[भावार्थ— ओ मन, जो विपद के भय को रोकते हैं, उनको क्यों नहीं पुकारते? यह कैसी विडम्बना है कि झूठे भ्रम में सदा तू भव के नशे में डूबा रहता है। यह धन-जन तो नहीं रहेंगे, इसलिए उनको मत भूलो। असार को छोड़कर, सार को भजो, भव-यातना चली जाएगी। अब धारणा करके यत्न से हित-वचन सुनो; मुख में हरि का नाम भर कर सतत घोषणा करो कि यदि इस भव को पार करना है तो यह विषय-वासना छोड़ो। उनके पास हृदय-मन को सौंप, उनकी साधना करो।]

पल्टु— वह गाना गाओगे?

नरेन्द्र— कौन-सा?

पल्टु— देखिले तोमार सेइ अतुल प्रेम आनने, ...

नरेन्द्र वही गाना गाते हैं—

देखिले तोमार सेइ अतुल प्रेम आनने,
कि भय संसार शोक घोर विपद शासने।
अरुण उदये आँधार जेमन जाय जगत छाड़िये,
तेमनि देब तोमार ज्योति मंगलमय बिराजिले
भकत-हृदय बीतशोक तोमार मधुर सान्त्वने।
तोमार करुणा, तोमार प्रेम, हृदये प्रभु भाविले,

उथले हृदय नयन-बारि राखे के निबारिए ?
जय करुणामय, जय करुणामय, तोमार प्रेम गाइए,
जाय यदि जाक् प्राण तोमार कर्म साधने।

[भावार्थ— जब आप का वही अतुल प्रेम-मुख देख लिया है तो संसार-शोक, घोर विपद, दमन (शासन) का क्या भय ? अरुण उदय होने पर जैसे अन्धेरा जगत छोड़कर चला जाता है, वैसे ही हे देव ! तुम्हारी मंगलमय ज्योति के विराजमान होने से, तुम्हारी मधुर सान्त्वना से, भक्त का हृदय वीतशोक हो जाता है। तुम्हारी करुणा, तुम्हारा प्रेम, हे प्रभु ! हृदय में ग्रहण कर लेने पर हृदय नयन-जल बनकर उथल पड़ता है। तब कौन रोक कर रखे ? जय करुणामय ! जय करुणामय ! तुम्हारा प्रेम गाते-गाते और तुम्हारे कर्म-साधन में यदि प्राण जाता है तो जाए।]

मास्टर के अनुरोध से फिर और गा रहे हैं। मास्टर और बहुत-से भक्तगण हाथ जोड़ कर गाना सुन रहे हैं।

गान— हरि-रस-मदिरा पिए मम मानस मातरे।
एक बार लुटइ अवनीतल, हरि-हरि बोलि काँद रे।
(गति कर कर बोले)।
गम्भीर निनादे हरिनामे गगन छाओ रे।
नाचो हरि बोले दुबाहु तुले, हरिनाम बिलाओ रे।
(लोकेर द्वारे-द्वारे)।
हरि प्रेमानन्दरसे अनुदिन भास रे,
गाओ हरिनाम, हओ पूर्णकाम; नीच वासना नाश रे॥

[भावार्थ— ऐ मेरे मानस (मन) ! तू हरि-रस-मदिरा पीकर मस्त हो जा। एक बार धरती पर लोट-पोट होकर, हरि-हरि कहते हुए रो रे ! (गति करो, गति करो कह-कहकर) हरि-नाम के गम्भीर निनाद (ध्वनि-गर्जन) को गगन में छा दो। दोनों बाहें उठाकर हरि बोलकर नाचो, और हरि-नाम वितरण करो लोगों के द्वार-द्वार पर जाकर। रात-दिन तुम हरि के प्रेमानन्द के रस में तैरो और हरि-नाम गाओ तथा पूर्णकाम हो जाओ, नीच वासना का नाश हो जाए।]

गान— चिन्तय मम मानस हरि चिद्घन निरञ्जन।

गान— चमत्कार अपार जगत रचना तोमार।

गान— गगनेर थाले रवि चन्द्र दीपक ज्वले,
तारकामण्डल चमके मोती रे।

धूप मलयानिल, पवन चामर करे,
सकल बनराजि फुटन्त ज्योति रे।
केमन आरति हे भवखण्डन तव आरति,
अनाहत शब्द बाजन्त भेरी रे॥

[भावार्थ— गगन के थाल में रवि-चन्द्र दीपक जल रहे हैं, तारक-मण्डल मोती रूप में चमक रहे हैं। मलयानिल धूप की गन्ध है, पवन चँवर डुला रही है, सब बनराजि की वनस्पतियाँ ज्योति विकसित कर रही हैं। यह कैसी तेरी आरती है! हे भव-खण्डन, अनाहत शब्द की भेरी बज रही है।]

गान— शेइ एक पुरातने पुरुष, निरञ्जने, चित्त समाधान करो रे।
[उसी एक पुरातन पुरुष, निरञ्जन पर चित्त को लगाओ भाई!]

नारायण के अनुरोध पर नरेन्द्र फिर और गा रहे हैं—

एसो मा एसो मा, ओ हृदय-रमा, पराण-पुतली गो।
हृदय आसने होओ मा आसीन, निरखि तोरे गो।
आछि जन्मावधि तोर मुख चेये,
जानो मा जननी कि दुख पेये,
एक बार हृदयकमल विकाश करिए,
प्रकाशो ताहे आनन्दमयी॥

[भावार्थ— ओ हृदय-रमा माँ, प्राण-पुतली माँ, आओ, आओ माँ! माँ, हृदय के आसन पर आसीन हो जाओ। हे माँ, तुम्हें तब निरखूँ। जन्म-अवधि में तेरे मुख की ओर देख रहा था, तुम तो माँ जानती हो, कैसा दु:ख पाया है! एक बार हृदय-कमल विकसित करके उस पर प्रकाशित हो जाओ, आनन्दमयी!]

(श्रीरामकृष्ण समाधिमन्दिर में— उनकी ब्रह्मज्ञान की अवस्था)

नरेन्द्र अपनी मर्जी से गाना गाते हैं—

निबिड़ आँधारे मा तोर चमके ओ रूपराशि।
ताइ योगी ध्यान धरे होये गिरि-गुहा-वासी॥

[भावार्थ— घने अन्धकार में माँ, तेरी वह रूप-राशि चमक रही है। इसीलिए तो योगी ध्यान धर कर गिरि-गुहा-वासी हो गए हैं।]

समाधि के इस गाने को सुनते-सुनते ठाकुर समाधिस्थ हो रहे हैं। नरेन्द्र फिर और एक बार वही गाना ही गा रहे हैं—

हरिरस-मदिरा पिये मम मानस मातरे

श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट हैं। उत्तरास्य हुए दीवार को ठेस दिए पाँव झुला कर तकिये के ऊपर बैठे हुए हैं। भक्तगण चारों ओर बैठे हुए हैं।

भावाविष्ट हुए माँ के संग में अकेले बातें कर रहे हैं। ठाकुर कह रहे हैं—

''इस समय खाकर जाऊँगा। तू आ गई? तू क्या गठरी बाँधकर स्थान निश्चय करके आई है?''

ठाकुर क्या बतला रहे हैं, माँ तू क्या आ गई है? ठाकुर और माँ क्या अभेद हैं?

''अब मुझे कोई अच्छा नहीं लगता।''

''माँ, गाना क्यों सुनूँ? उससे तो मन थोड़ी देर को बाहर चला जाएगा।''

ठाकुर धीरे-धीरे और भी बाहरी ज्ञान-लाभ कर रहे हैं। भक्तों की ओर देखकर कह रहे हैं,

''पहले किसी को माछ (मछली) को जिन्दा रखे देखकर आश्चर्य किया करता था; मन में सोचता कि ये कैसे निष्ठुर हैं, बाद में इनकी हत्या करेंगे! अवस्था जब बदलने लगी तब देखा कि शरीरसमूह तो गिलाफ (खोल) मात्र हैं। रहे तो भी कुछ आता-जाता नहीं, जाने पर भी आता-जाता नहीं।''

भवनाथ— तो फिर मनुष्य-हिंसा की जाए!— मार डाला जाए?

श्रीरामकृष्ण— हाँ, इस अवस्था में हो सकता है।* यह अवस्था सब की नहीं होती— ब्रह्मज्ञान की अवस्था!

''दो-एक स्तर नीचे आने पर तब ही फिर भक्ति और भक्त अच्छे लगते हैं।

---

* न हन्यते हन्यमाने शरीरे। (गीता 2/20)

''ईश्वर में विद्या-अविद्या दोनों ही हैं। यह विद्या-माया ईश्वर की ओर ले जाती है, अविद्या-माया मनुष्य को ईश्वर से दूर ले जाती है। विद्या का खेल— ज्ञान, भक्ति, दया, वैराग्य हैं। इन सबका आश्रय करने से ईश्वर के पास पहुँचा जाता है।

''और एक धाप (सीढ़ी) चढ़ते ही ईश्वर— ब्रह्मज्ञान! इस अवस्था में ठीक बोध हो रहा है, ठीक देख रहा हूँ— वे ही सब कुछ बने हुए हैं! त्याज्य-ग्राह्य नहीं रहता! किसी के ऊपर राग भी तो नहीं रहता।

''गाड़ी से जा रहा हूँ— बरामदे में खड़ी दो वेश्याएँ देखीं। देखा साक्षात् भगवती! देखकर प्रणाम किया।

''जब ऐसी अवस्था प्रथम हुई, तब माँ काली की पूजा करना और भोग देना नहीं कर पाया। हलधारी और हृदे ने कहा, खजाँची कहता है, भट्चाज्जि भोग नहीं देंगे तो क्या करेंगे? कुवाक्य कहा है, सुनकर मैं केवल हँसने लगा था, तनिक-सा भी तो क्रोध नहीं हुआ।

''यह ब्रह्मज्ञान-लाभ करके फिर लीला-आस्वादन करते हुए टहलो। एक साधु एक शहर का रंग देखता हुआ टहल रहा था। तब उसका एक परिचित साधु से मेल हुआ। वह बोला, 'तुम जो आमोद करते हुए टहल रहे हो, 'तल्पितल्पा' (बोरिया-बिस्तर) कहाँ है? उन्हें कोई चुराकर तो नहीं ले गया?' पहले साधु ने कहा, 'नहीं महाराज, पहले निवास-स्थान पकड़कर गठरी-वठरी ठीक-ठाक करके, कमरे में रखकर ताला लगाकर तब शहर का रंग देखता टहल रहा हूँ।'' *(सबका हास्य)*।

भवनाथ— यह तो खूब ऊँची बात है।

मणि *(स्वगत)*— ब्रह्मज्ञान के बाद लीला-आस्वादन! समाधि के उपरान्त नीचे उतरना!

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर आदि के प्रति)*— ब्रह्मज्ञान क्या सहज ही होता है? मन का नाश बिना हुए नहीं होता। गुरु ने शिष्य से कहा था, तुम मुझे मन दो, मैं तुम्हें ज्ञान देता हूँ। न्याँगटा (नागा साधु तोतापुरी) कहा करता था, 'आरे मन बिलाते नाहि!' (अरे! मन को इधर-उधर नहीं जाने देना चाहिए।)

(Biology— 'Natural law' in the spiritual world)

''इस अवस्था में केवल हरि-कथा अच्छी लगती है और भक्त-संग।

(राम के प्रति)— ''तुम तो डॉक्टर हो— जब रक्त के साथ मिलकर एक हो जाएगा तब ही तो काम होगा। वैसे ही इस अवस्था में अन्दर-बाहर ईश्वर है— यह देखोगे। वे (ईश्वर) ही हैं देह, मन, प्राण, आत्मा!

मणि *(स्वगत)*— Assimilation!

श्रीरामकृष्ण— ब्रह्मज्ञान की अवस्था मन का नाश होने से ही होती है। मन का नाश होने पर ही 'अहं'-नाश— जो 'मैं-मैं' करता रहता है। यह भक्ति-पथ से भी होता है, और फिर ज्ञान-पथ अर्थात् विचार-पथ से भी होता है। 'नेति-नेति' अर्थात् 'यह सब माया, स्वप्नवत्' यही विचार ज्ञानी करते हैं। यह जगत 'नेति-नेति'— माया है। जगत जब उड़ जाता है, शेष रह जाते हैं कुछ जीव— 'मैं' रूप घट बीच में रहता है!

''कल्पना करो दस जल-पूर्ण घट हैं। उनके बीच सूर्य का प्रतिबिम्ब है। कितने सूर्य दिखाई देते हैं?''

भक्त— दस प्रतिबिम्ब और एक सत्य सूर्य तो है ही।

श्रीरामकृष्ण— कल्पना करो, एक घट टूट गया, अब कितने सूर्य दिखाई देते हैं?

भक्त— नौ। एक सत्य सूर्य तो है ही।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, नौ के नौ ही तोड़ दिए गए। कितने सूर्य दिखाई देंगे?

भक्त— एक प्रतिबिम्ब सूर्य। एक सत्य सूर्य तो है ही।

श्रीरामकृष्ण *(गिरीश के प्रति)*— अन्तिम घट के टूट जाने पर क्या रह जाता है?

गिरीश— जी, वही सत्य सूर्य।

श्रीरामकृष्ण— नहीं। क्या रहता है— वह मुख से नहीं कहा जाता। जो है, बस वही है। प्रतिबिम्ब सूर्य के न रहने पर सत्य सूर्य है, यह कैसे जानोगे! समाधिस्थ होने पर अहं तत्त्व का नाश हो जाता है। समाधिस्थ व्यक्ति नीचे उतर आने पर क्या देखता है— मुख से नहीं बोला जा सकता।

चतुर्थ परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण का भक्तों को आश्वासन-प्रदान और अंगीकार)

सन्ध्या हो गई है। बलराम की बैठक में प्रदीप-दिये जल रहे हैं। ठाकुर श्रीरामकृष्ण अब भी भावस्थ हैं, भक्तों से घिरे हुए हैं। भाव में बोल रहे हैं—

''यहाँ पर और कोई नहीं है, जभी तुम लोगों से कह रहा हूँ— आन्तरिक ईश्वर को जो जानना चाहेगा, उसका ही होवेगा, होगा ही होगा। जो व्याकुल है, ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता, उसका ही होगा।

''यहाँ के जो लोग हैं (अन्तरंग भक्तगण) वे सब जुट गए हैं। और अब जो लोग आएँगे वे बाहर के लोग हैं। वे भी अब बीच-बीच में (दक्षिणेश्वर) जाएँगे। (माँ) उनसे कह देंगी, 'यह करो, इस प्रकार से ईश्वर को पुकारो'।''

(ईश्वर ही गुरु— जीव का एकमात्र मुक्ति का उपाय)

''क्यों ईश्वर की ओर (जीव का) मन नहीं जाता? ईश्वर की अपेक्षा उनका (महामाया का) जोर भी तो बहुत अधिक है। जज की अपेक्षा उसके चपरासी की क्षमता अधिक है *(सबका हास्य)*।

''नारद से राम ने कहा— नारद, मैं तुम्हारे स्तव से बड़ा प्रसन्न हूँ। मुझसे कोई वर लो! नारद ने कहा, राम! तुम्हारे पादपद्मों में जैसे मेरी शुद्धा भक्ति हो जाए, और जैसे तुम्हारी भुवनमोहिनी माया में मुग्ध न होऊँ। राम बोले— तथास्तु, और कुछ वर लो! नारद बोले, राम और कुछ वर नहीं चाहिए।

''इस भुवनमोहिनी माया से सब मुग्ध हैं। ईश्वर देह धारण करते हैं तो वे भी मुग्ध हो जाते हैं। राम सीता के लिए रोते-रोते फिरते रहे थे। पञ्चभूत के बन्धन ब्रह्म करे क्रन्दन।'

''किन्तु फिर भी एक बात विशेष है— ईश्वर इच्छा करते ही मुक्त हो जाते हैं!''

भवनाथ— गार्ड (रेलगाड़ी का) अपनी इच्छा से रेल की गाड़ी में अपने-आपको बन्द कर लेता है और फिर मर्जी होने से नीचे उतर सकता है!

श्रीरामकृष्ण— ईश्वरकोटि— जैसे अवतार आदि— सोचने मात्र से ही मुक्त हो सकते हैं। जो जीवकोटि हैं, वे नहीं हो सकते। जीवगण कामिनी-काञ्चन में बद्ध हैं। घर के द्वार-खिड़कियाँ स्क्रुओं के द्वारा रुद्ध कर रखे हैं, बाहर कैसे निकलें?

भवनाथ *(सहास्य)*— जैसे रेल के थर्ड क्लास पैसेञ्जर (तृतीय श्रेणी के यात्री) चाबी से बन्द होते हैं, बाहर निकल नहीं सकते!

गिरीश— जीव यदि इसी प्रकार सब ओर से बद्ध है तो फिर उसका उपाय क्या है?

श्रीरामकृष्ण— किन्तु गुरु रूप बनकर ईश्वर स्वयं यदि माया-पाश छेदन करते हैं तो फिर भय नहीं।

ठाकुर क्या इंगित कर रहे हैं कि वे निज ही जीव का माया-पाश छेदन करने के लिए देह धारण करके, गुरुरूप होकर आए हैं?